पंचम अध्याय

कुसुम अंसल के आलोच्य हिन्दी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में आशय

1. उस तक - 1979

2. अपनी अपनी यात्रा - 1981

3. एक और पंचवटी - 1985

अध्याय : 5

कुसुम अंसल के आलोच्य हिन्दी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में आशय

कुसुम अंसल ने "उदास आँखे", "न्यू का पत्थर", "उस तक", "अपनी-अपनी यात्रा", "एक और पंचवटी", "रेखाकृति" आदि उपन्यास लिखें। हमने यहाँ केवल उनके "उस तक" (1979), "अपनी-अपनी यात्रा" (1981), "एक और पंचवटी" (1985) को प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध का विषय बनाया है। इन तीन आलोच्य हिन्दी उपन्यासों में स्थित मनोवैज्ञानिकता की परतों को भी खोलकर रखने का प्रयत्न किया है। हम यहाँ कुसुम अंसल के आलोच्य हिन्दी उपन्यासों के आशय के साथ-साथ उनकी मनोवैज्ञानिकता पर भी सोचेंगे।

मनोविज्ञान का अर्थ है मन का विज्ञान। अर्थात् मन की प्रकृति-वृत्तियों, दशाओं और क्रियाओं आदि का विवेचन करने वाला विज्ञान। डॉ॰शकुन्तला शर्मा के शब्दों में "व्यक्ति के अन्तर्गत अनेक अभिलाषाएँ उठती हैं। इसमें से कुछ जन्मजात होती है और कुछ अर्जित प्रेरणाएँ होती हैं। ये दैहिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है किन्तु इन सब की तृप्ति प्रायः एक-सी नहीं होती। कभी इनके मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। बाधाओं के कारण व्यक्ति की अभिलाषा अपूर्ण रह जाती है। इसी को कुण्ठा कहते हैं। ये कुण्ठाएँ विभिन्न रूपों में विभिन्न व्यक्तियों में प्रकट होती हैं। अन्तर्मुखी पात्र इस कुण्ठा के कारण आत्महनन की प्रवृत्ति का शिकार हो जाता है।"

फ्रायड़ और युंग इस विचारधारा के प्रवर्तक हैं। "मनुष्य के बाह्य जीवन के संघर्षों के अतिरिक्त अन्तर्मन में भी एक प्रकार का वैचारिक संघर्ष गतिशील रहता है, जिसका अध्ययन मनोविज्ञान द्वारा सम्भव है।"[1] आज के हर उपन्यास के हर

पात्र का मनोवैज्ञानिक चित्रण अवश्य होता है। मन की अतल गहराइयों में पहुँच कर लेखक पात्र की भीतरी ग्रंथियों, कुंठाओं को प्रकट करता है। फिर भी कुछ विशिष्ट पात्र जिनमें मनोवैज्ञानिक तत्व खूब उभरकर आते हैं। "मनोविज्ञान व्यक्ति के भाव विचार एवं व्यवहार के अध्ययन का विज्ञान है।"[2] अतः साहित्य और मनोविज्ञान का गहरा संबंध है। प्रथम में व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं की अभिव्यक्ति होती है, एवं द्वितीय उस अभिव्यक्ति के माध्यम द्वारा साहित्यकार की मानसिक क्रियाओं उसकी मान्यताओं एवं व्यक्तित्व की जानकारी कराने में सामर्थ्य प्रदान करता है। "मनोविज्ञान व्यक्ति के स्वभाव, व्यवहार एवं व्यक्ति की अभिव्यक्ति का अध्ययन करता है।"[3]

महिला उपन्यासकारों ने भी बहुविध मनोवैज्ञानिक विचारधारा को अपने उपन्यासों में प्रवाहित किया हैं। नारी-पुरूष समाज के दो महत्वपूर्ण घटक हैं। एक की मनश्चेतना दूसरे को प्रभावित किए बिना नहीं रहती। आज उपन्यासों में विचित्र नारी मनोविज्ञान का विश्लेषण करते समय युग सापेक्षता को नज़र रखते हुए नारी की मानसिकता का आकलन दृष्टि में रखना समीचीन होगा।

आज के उपन्यासों में सामयिकता की स्वीकृति विशेष रूप से मिलती है, अतः इन उपन्यासों का भोक्तृत्व शुद्ध सामाजिक नहीं होकर व्यक्ति की अंतरंग समस्या बन गया है। उनके केन्द्रीय पात्र अपनी संवेदनाओं में लोगों में समष्टिगत नहीं रह पाये। "प्रत्युत उनकी निजी भोग की समस्या ही सर्वोपरि बन गई है।"[4] केन्द्रीय पात्र मानो अपनी विराटता से अधिक अपनी लघुता में जीवित रहने के अभ्यस्त हो गए हैं। आत्मकेन्द्रित पात्रों के आन्तरिक घात-प्रतिघातों का मनोविश्लेषण ही इन उपन्यासों का चरम साध्य बन गया है।

ऐसे उपन्यासों के केन्द्रीय पात्रों के कुंठाग्रस्त व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले तत्वों-घटनाओं तथा स्थितियों का सम्यक् ज्ञान पा लेना ही नयी पीढ़ी के पाठकों की एक जटिल लेकिन अनिवार्य समस्या है। इन उपन्यासों के पाठक पात्रों की बदलती रूचियों, घटनानुकूल परिवर्तित मनोग्रंथियों तथा उनके द्वन्दात्मक मनोजगत

की स्थितियों की सही जानकारी पाना चाहता है। "ऐसी स्थिति में उनकी रूचि परिवर्तनों संवेगों तथा मानसिकता के तर्कपुष्ट विश्लेषण के लिए मनोविज्ञान जगत् की उपलब्धियों से परिचित हो जाना पाठकों के लिए आवश्यक शर्त है।"[5]

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में व्यक्ति को समाज के अधिपत्य से छुटकारा दिलाकर उसकी मूल चेतना को व्यक्त होने का अवसर दिया जाता है। व्यक्ति का समाज में जो स्वरूप दिखाई देता है वह यथार्थ में उसका निजी नहीं होता। अन्य उसे अपनी विशेष दृष्टि से देखकर उसके संबंध में अपनी अलग धारणा बनाते हैं। इस तरह व्यक्तियों की धारणा तथा मनुष्य के निजत्व के बीच अन्तर होता है। ऐसी स्थिति में विशाल समाज के बीच व्यक्ति का एकाकीपन और भी बढ़ जाता है। "मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनुष्य का मन केंद्र में होता है। एवं मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार उसके अन्तरिक जीवन को उजागर कर उसमें निहित स्वाभाविक शक्ति को पहचानने का प्रयास करता है।"[6] मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों का मुख्य तत्व पात्रों का मनोचित्रण होता है। उपन्यास का अन्य तत्व इसी केन्द्रीय तत्व से संचालित होते हैं। उपन्यास की कथा पात्र अथवा पात्रों की मानसिक गतिविधियों का उद्‌घाटन करती है, अन्तर धाराओं में एक सूत्रता खोजती है और स्फूट घटनाओं के पात्र अथवा पात्रों के मानस की संगति बैठाती है। पात्रों की मनोभूमि का व्यक्तिकरण मनोवैज्ञानिक उपन्यास का उद्देश्य होता है।

हिन्दी का मनोवैज्ञानिक औपन्यासिक लेखन पश्चिम देशों के उपन्यासों से प्रभावित रहा है अथवा उस पर फ्रायड़, युंग, काफसेन जैसे मनोविज्ञान-वेत्ताओं का प्रभाव पडा है। पुनः इन उपन्यासों में चरित्र की किसी अंतरंग संवेदना को भोक्तृत्व का आधार बनाया गया है। इस तरह जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी, अज्ञेय, राजकमल चौधरी आदि के उपन्यासों के केन्द्रीय पात्र अपनी संवेदनाओं में उतने सामाजिक और बहिरंग नहीं रहे।

"मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कथायोजना अलग होती है वे व्यक्ति सापेक्ष होते हैं। उनमें मनोरंग की प्रधानता होती है।"[7] अभिनयात्मक शैली के द्वारा पात्रों की द्वन्द्वात्मक प्रवृत्ति को सहजता से अभिव्यक्त किया जाता है। इन उपन्यासों

में शिल्प वैविध्य होता है - नयी पीढ़ी के कथाकार रचना संयोजना में किसी एक प्रकार की पद्धति का सहारा नहीं लेते, बल्कि दो या दो से अधिक शिल्प पद्धतियों का एक साथ निर्वाह करके अपनी रचना पद्धति को अधिक बौद्धिक एवं जटिल बना देते हैं। एक ही उपन्यास में एक साथ ही एकालाप शैली, प्रथम पुरूष कथा वाचन शैली, चेतना प्रवाह पद्धति वाली शैली, डायरी शैली तथा पत्रात्मक शैली आदि का उपयोग होता है।

"महिला उपन्यासकारों ने भी अनेक स्थलों पर सन्त्रास, कुंठा, सन्देह, विश्वास, विद्रोह, तनाव और भावनाओं का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है, जो स्वाभाविक है।"[8]

"महानगर जहाँ एक ओर मनुष्य की मानसिकता को असहाय और दयनीय बनाता है, दूसरी ओर उसके कामकाजी जीवन में कुंठाएँ पैदा करता है। एक कर्मठ, उत्साही कार्यकर्ता का मन दफ्तर की राजनीति के भीतर धीरे-धीरे घुटता ही नहीं मरने लगता है। जीवन जीने का उत्साह जिसका सूत्र पकड़ कर महानगर का वासी महानगर के कर्मक्षेत्र में उतरा था, वही सूत्र उसके जीवन में खोखलापन भर देता है।"[9] कुसुम अंसल के आलोच्य हिन्दी उपन्यासों के आशय में हमने ये मनोविज्ञानकता के सार-तत्वों कों तलाशने का प्रयत्न किया है।

<u>कुसुम अंसल - "उस तक" (1979)</u>

कुसुम अन्सल के उपन्यास "उस तक" की नायिका मुक्ता भारतीय निम्न-मध्यवर्गीय लोगों के तंगदिल मुहल्ले में पैदा हुई है। जहाँ टूटे, कच्चे मकानों के भीतर छत-छज्जों पर दोपहर के सन्नाटे में यौन-व्यापार होते हैं। बचपन में अपनी सगी बहन के प्रेमी द्वारा मुक्ता का बहन विद्या और मुक्ता पर जबरी की जाती है। मुक्ता वास्तविकता के धरातल पर से आगे बढ़ रही है और अपने परिवेश से पायी समूची कुण्ठाएँ उसके चरित्र की बुनावट पर प्रत्याघात कर रही है। वह धीरे-धीरे उस सतह को अपनी अल्पावस्था में भी पहचान कर ऊपर उठने का प्रयास कर रही है। अनिल द्वारा हुई जबरी उसकी सतत ऊपर उठने की प्रक्रिया पर भीषण

आघात पहुँचाती है, जिससे उसकी चेतना "निद्रा"वाले कक्ष में ठहर जाती है। वह अपनी वास्तविकता को त्याग देना चाहती है और इसी कारण वह घर छोड़कर होस्टल में रहने लगती है। उसी समय नीना का घर उसे उन सभी इच्छाओं का केन्द्र प्रतीत होने लगता है जो उसे अपने लिए चाहिए था। ऐसी भावना उसके अवचेतन में तैर कर सबसे ऊपरी सतह पर आ सकती है और यही एक प्रकार से उसके जीवन का ध्येय बन जाता है। एक इच्छा पूर्ति की भावना जिसके कारण वह पहले बरसाती में अपना घर सजाती है, फिर फ्लैट में। परंतु वह घर, वह गली छोड देने पर भी उसे लगता है कि एक बदबू का भभका उसके साथ-साथ निरन्तर चलता है। यह और कुछ नहीं, निम्न मध्यवर्गीय परिवार में जन्म लेने की कुण्ठा है। उसे यह भी आभास होता है कि वह "गंदगी केवल नालियों में नहीं चमचमाते आफिस में भी हैं।"[10] और इसका अनुभव होता है जब सतपाल बाबू के बदबूदार दाँत उसके शरीर को छील गये। वह बदबू मुक्ता की आत्मा तक उतर कर उसे अस्तव्यस्त करती रहती है। वह उससे मुक्त नहीं हो पाती। उपहार स्वरूप प्राप्त विदेशी "परफ्यूम" भी उसे इस बदबू की गिरफ्त से नहीं छुडा पाते। मुक्ता निरन्तर अपनी इच्छापूर्ति के मार्ग पर चलती जाती है। उस बीच आये वह अपने शरीर को भी नज़र जाती है - शायद इस कारण भी कि पहले उसका "बालिकोचित अहंभाव" नष्ट हो चुका है। भीतर की सहज भावनाएँ एकत्र होकर इच्छापूर्ति की चाहत में एकाकार हो गई है और वह एक सीमा तक उसे प्राप्त भी कर लेती है। "उसके जीवन में नया फ्लैट आ गया है नये कपड़े, परफ्युम, फीएट और विदेश का ट्रीप।"[11] मुक्ता अपनी इस ध्येय प्राप्ति के बीच अपने भीतर की सच्ची और श्रेष्ठ प्रवृत्तियों को भी नहीं खोती, और इसी से उसे बहुत बार हानि पहुँचती है। सच बोलकर वह सागर के प्रेम को ही नहीं, अपने भविष्य को भी खो देती है। यह घटना उसे और अक्खड़ तथा जिद्दी बना देती है। सुखेन्दु के विवाह-प्रस्ताव पर वह कहती है, "मेरी उम्र अब वह नहीं रही जहाँ भावनाएं मन को बहाकर एक किनारे से दूसरे तक पहुँचा देती है। मैं शायद किसी से शादी नहीं करूंगी सुखेन्दु वह सब मेरे लिए नहीं है और अब अकेले जीने की मुझे आदत हो गई है।"[12] संसार की दृष्टि में उसकी स्थिति हम लोग चाहते भी नहीं कि बहुत रहे आपके पास,

आखिर में उसे एक्ट्रेस नहीं बनना, न ही स्पिन्टर।"[13]

अपनी इच्छापूर्ति की यात्रा में उसे एक प्रकार की सम्मोहित विचार की आदत पड़ जाती है। जिसके कारण वह कुछ और सोच ही नहीं पाती। अपने अवचेतन में संजोयी उच्चवर्गीय जीवन जीने की इच्छा और बचपन में हुए जबरदस्ती ने मुक्ता को एक कम्पल्सिव आचरण की राह पकड़ा दी. जिस पर चलना उसकी मजबूरी बन गई। चाहे उसमें सहज उठती पत्नी और माँ बन पाने की भावना का जन्म होता भी है पर संसार और उसका "स्व" उसे याद दिलाता रहता है कि "मैं और कुछ नहीं हूँ, गंदगी के धरातल पर से चलकर आयी "अभिनेत्री" हूँ जिसे केवल अभिनय करना है जीवन के कोमल भावों का मुझसे कोई सरोकार नहीं। समाज मुझसे केवल अभिनय की अपेक्षा करता है, जीवन के कोमल पलों की नहीं और अब मैं अभिनय में जीना सीख रही हूँ।"[14] उसके जीवन में कई पुरूष आये, कुछ दिन ठहरे, चले गये, न वह विवाहिता का दर्जा पा सकी, न ही कुँवारी बची और न ही विधवा। व्यक्ति का पुरूष का आकर्षण उसने अपने जीवन से निकाल दिया। जैसे वह स्त्री न रहकर उस असहज "एबनार्मल" स्थिति को जीने लगी जिसे वह "एयरपोर्ट" का नाम देती है। एक ऐसा स्थल जहाँ अनेक यात्री आते हैं, कुछ पल रूकते हैं, विश्राम करते हैं और चले जाते हैं। न तो उन यात्रियों को "एयरपोर्ट" से लगाव होता है न "एयरपोर्ट" को उन मुसाफिरों से। तभी मुक्ता को पुरूषों को चुम्बन देते, देह समर्पित करते कोई लगाव नहीं महसूस होता। "वह सामाजिक मानव से उठकर पूर्ण मानव बनने के प्रयास में ग्रंथियुक्त मानव बन कर रह जाती है। जैसे समूची स्थिति के भीतर उसके मन, शरीर, भावनाओं का एक पदार्थीकरण हो जाता है।"[15]

"उस तक" उपन्यास की नायिका मुक्ता के बाबूजी की मृत्यु होने के कारण वह बहुत दुःखी हो जाती है। उसकी बहने विद्या, उषा तथा अन्य रिश्तेदार आते हैं। मुक्ता की मानसिकता दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। पूरी रात चुपचाप वह बाबुजी के कमरे में बैठी रही। "उनके कमरे में जला हुआ मिट्टी का नन्हा दीया जलकर उसे चुनौती दे रहा था - असीम अन्धकार से लड़ पाने की, इतने

अंधेरे को पी जाने की, इस अन्धेरे से लपट की तरह जल उठने की। मुक्ता भी जैसे सिमटकर - एक नन्हासा दीया हो गयी थी।"[16] अपने आप को एक कमरे में बन्द कर लेती थी। एकान्तवास में अधिक रहने लगी। उसे तनावमुक्त करने के लिए सेनबाबू और चोपडा साहब ने जबरदस्ती से गोलियाँ खिलायी। दीया बना उसकी तन मिट्टी के कणों में बदल गया। वह घुटनशीलता को अनुभव करने लगी।

बाबूजी की मृत्यु के बाद वह सोच रही थी कि कौन अपना है ? जो एक आधार और आश्रय था, वह बाबूजी चल बसे। कौन अपना है ? माँ, विद्या, उषा, बाबूजी बस इतना ही परिवार था। माँ चली गयी, बाबूजी चले गये। कल विद्या, उषा अपने-अपने घर चली जायेगी। वे दोनों भी गृहस्थी जीवन जी रही थी। "वह उनके अनुरूप कभी जी नहीं सकी। अब भी उन सबके बीच गहरी दरार है। वे दोनों एक छोर पर रह जाती है और मुक्ता दूसरे पर।" वह स्वयं को अलग समझने लगी। वह बीच की खाई को कम करने का साहस नहीं रखती थी। वह भीड़ में भी अकेलापन महसूस करने लगी।

अपना गम भूलने के लिए ऑफिस में जाती है, तो ऑफिस के सभी लोग उससे दूर होते जा रहे थे। उससे अलग कहीं दूर-दूर। क्योंकि सत्रह-अठारह साल की लड़की दफ्तर में काम करने आयी थी। उसके सामने मुक्ता का व्यक्तित्व फीका पड़ने लगा। "इतने दिनों तक सतपाल बाबू के इशारे पर वह हरकारे की तरह दु:खों के जंगलों में भटकी थी, दौडी थी, आज उन्हीं के निशानों पर घायल होकर यहाँ ढेर हो गयी है। अब चाहे वह जो भी फैसला करे ?"[18] कलकत्ता में उसकी पोस्टिंग कर देने की सोची थी सतपाल बाबू ने और उसने कहा था कि अगर वहाँ जाने का मन नहीं करता तो यहीं काम कर सकती है। फैसला करने के द्वन्द्व में मुक्ता डूबी जा रही थी। उत्तरोत्तर उसकी उदासीनता बढ़ती जा रही थी। पता नहीं किस स्थिति तक पहुँचने वाली थी। उसे ऐसा लग रहा था कि उसकी वहाँ आवश्यकता समाप्त हो गयी है। प्रवीण उसकी जगह पर बैठी मुस्तैदी से टाइप कर रही थी। वह घायल असहाय, खण्डहर बनकर खड़ी थी। मुक्ता की

असहायता के दर्शन यहाँ होते हैं।

इस असहाय हालत में मुक्ता न विधवा है, न विवाहिता। वह अपने आप को किस श्रेणी में रखना चाहती है, इस पर सोच रही है। रास्ते पर चलते समय उसने कितने व्यस्त जोडों को देखा। वह अपने आपको तलाशने लगी। वह सोचती है -"मुक्ता प्यार नहीं कर सकती। न उसने कभी किया है न कोई उसे करता है। अनिल, सागर, सतपाल, किस चेहरे को अपने नाम के साथ जोड ले। शायद सागर के नाम को छू पाती।"[19]

अखबार में उसकी अभिनय की खूब प्रशंसा हुई। तीन दिन लगातार मुक्ता अपने अद्वितीय अभिनय के साथ रंगमंच पर छायी रही। अखबारों में छपी चर्चा उसे छू नहीं रही थी। वह एक अलग विश्व में संचार कर रही थी। "बंद कमरे में सारा दिन सिगरेट के धुएँ और बीअर के गिलास में डूबी मुक्ता केवल शाम को अभिनय के समय बाहर आती।"[20] शाम के पाँच बजे की फ्लाईट से वह विदा होनेवाली थी। फूलों के गुच्छों को देकर लोगों ने उसको विदा किया। फूलों के गुच्छ हवाई अड्डे की सीट पर ही छोड आयी थी। राहत पाने के लिए वह नशापान का प्रयोग करती है।

किन्नी के दार्जिलिंग होस्टल भेजने की अक्षय की खबर ने मुक्ता को फिर उदास बनाया। वह किन्नी द्वारा पाये गये सुख में वास्तविकता को भूल बैठी थी। अक्षय ने उसकी उदासी को भाप लिया। मुक्ता को लगता है कि, "वह भूल गयी थी कि वह तिनके जोड़कर घर बना रही हे, वे तिनके जो उसके नहीं है, आंधी के तेज प्रवाह में उडकर दूर चले जायेंगे और वह अकेली बिना छत के तडफती खड़ी रह जायेगी।"[21] इतने में किन्नी दौडती हुई आकर कहती है, "पापा आया बोलती है मौसी माँ जल्दी ही मेरी माँ बन जायेगी। अच्छी बात है न मैं खाली "माँ" बोलूँगी उनको।"[22] किन्नी के बालसुलभ भोलेपन पर यहाँ प्रकाश पड़ता है। किन्नी जादुई परी की भाँति उसकी पूरी जीवन गति को बदलना चाहती थी। मुक्ता कितनी बहती गयी थी। अक्षय का हाथ पकड़कर जीवनरूपी जलप्रवाह में

बहती रही थी। पीछे का सबकुछ बन्द-सा हो गया था। अब वह कीवाड़ मुक्ता से खुले या न खुले एक प्रश्न बन गया था। लोग उनके संबंध को तोल रहे थे। पर परिणाम कितना गलत निकल रहा था, एकदम विपरीत अर्थहीन।

अक्षय थक कर सोफे पर लेटते ही उसे नींद लगती है। उसने एक सपना देखा। एक बड़ी नदी के किनारे वह खड़ा है। आकाश साफ है। वर्षा थम गयी है। एक बड़ा-सा इन्द्रधनुष्य आसमान पर चढ़ गया है। वह नदी को पार करना चाहता है। नदी में एकाएक एक नाव को पाता है। उसमें अपनी माँ को देखता है। वह मुस्कुराहट उसे बुला रही है। इतने में इंद्रधनुष्य टूट जाता है। गुलाबी रंग की साडी पहनी हुई बेला हाथ फैलाकर उसे बुला रही है। अक्षय खुशी से उसकी ओर बढता है। उसके पांव रेत में धस कर भारी हो आजे है। इन्द्रधनुष्य के रंग फिर से बिखेरने लगते है और पीले रंग में रंगी मुक्ता वहाँ खड़ी दिखाई देती है। उसके हाथों में पतवार है, पर न वह बुला रही है, न उसकी आँखों में निमंत्रण है। अक्षय नाव पर बेठता है मुक्ता मुँह घुमाकर बेठी है। अक्षय उसका आँचल छूता है। पर वह ठंडे भाव से कहती है "मैं तुम्हे पार उतार दूँगी। अक्षय मुझे मत छुओ। मैं उदासियों की देवी हूँ। अगर मुझे छू लेंगे तो इस आँसुओं की नदी में बाढ आ जायेगी।"[23] यहाँ स्वप्न मनोविज्ञान पर प्रकाश पड़ता है।

आधुनिक युग अर्थप्रधान युग है। अर्थ ने समस्त मानव जाति पर अपना प्रभाव डाला है। अर्थ के लिए आज नारी घर की चार दीवारों को लांघकर संसार के खुले प्रांगण में विचरण करने लगी है। वह चुल्हें चौके के साथ अध्ययन, अध्यापन और दफतर भी संभालने लगी है। दोहर भूमिका निभाते-निभाते उसकी स्थिति धोबी के कुत्ते की तरह हो गयी है। जो न घर का होता है न घाट का। इसी कारण उसके आचरण और मनोभाव में द्रुतगति से परिवर्तन होने लगा है। परिणामतः जीवन के महत्वपूर्ण पहलु प्रेम और यौन-संबंधी उसकी धारणाएँ परिवर्तित होने लगी है। डॉ॰प्रमिला कपूर का कहना है कि "आधुनिक युग में प्रेम स्त्री-पुरूष के मध्य स्थायी भाव नहीं है। नारी विवाह से पूर्व ही यह निश्चित कर लेती है कि उसे किससे कितना लाभ होगा।"[24] वह इसी आधार पर संबंध स्थापित करती है। अधिकांश नौकरी पेशा नारियाँ अब विवाहमूल्य की नकारती दिखाई देती है। लेकिन अपने जीवन में प्रेम और यौन-संबंधों का .....

स्वीकार भी करती है। मुक्ता ऐसा ही एक नारी पात्र है जो विवाह को नकारकर प्रेम और यौन-संबंधों का स्वीकार करती है।

डॉ॰पारूकांत देसाई के मतानुसार कुसुम अंसल के उपन्यास "उसतक" की नायिका मुक्ता, एक निम्न-मध्यवर्ग की युवती है, जिसने अपने परिवार की को करीब से सिर्फ देखा ही नहीं तो अनुभव भी किया है। पिताजी गरीबी से जूझते हुए उसने देखा है। गरीबी के कारण उसकी माँ का व्यवहार भी ठीक नहीं है। पिता ने उसे उसकी माँ की इच्छा के विपरीत पढ़ाया है, सौतेले माँ के रूखे व्यवहार के कारण वह होस्टेल में रहती है और आत्मनिर्भर हो जाती है। उसकी आत्मा माँ के व्यवहार से कुचल गयी, उसके चरित्र को अनिल ने चूर-चूर कर दिया था। सागर, सतपाल बाबू, अक्षय जैसे पुरूष उसके जीवन में आये फिर भी "वह उन्मुक्त रूप से जीने का रास्ता चुनती है। "उसके व्यक्तित्व से आकर्षित होकर कई पुरूष उसके जीवन में आते हैं पर उसे जान लेने के बाद उसे स्वीकार करने के लिए आगे नहीं बढते। छोटी उम्र से ही मुक्ता जिन्दगी की तलखियों से गुजरती रही। लेखिका ने निम्न-मध्यवर्ग की सामाजिक, आर्थिक विषमताओं का वर्णन बड़े ही सजीव और सशक्त ढंग से किया है।"[25]

निष्कर्ष

प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता आदि महानगरों से जुड़ी हुई हैं। इन महानगरों के साथ मुक्ता का जुड़ाव दिखाकर उसके जिंदगी के विविध मोड़ चित्रित करने में कुसुम अंसलजी ने कमाल की सफलता प्राप्त की है। वास्तव में इस उपन्यास में मुक्ता की मनोवैज्ञानिकता की हिलोरों को चित्रित किया है। हर महानगर के साथ मुक्ता की अलग-अलग कहानी जुडी है। इन तीन-चार घटनाओं को एक धागे में बाँधकर उपन्यास की कथावस्तु बनायी है, जो एक प्रयोगधर्मिता का परिचय देती है।

मुक्ता का दिल्ली का प्रारम्भिक जीवन, उसका पारिवारिक जीवन, उसकी मानसिकता को अनिल द्वारा की गयी जबरी के कारण बैठा जबरदस्त धक्का, इससे

उसकी मानसिकता में आयी ऋणता या बिगाड़, माता-पिताजी के बीच का संघर्ष, परिवार का अंधविश्वास, उसकी शिक्षा-दीक्षा, सतपाल निगम प्रा॰कम्पनी में मिली नौकरी, दिल्ली में मिला फ्लैट, सतपाल बाबू से जुड़े यौन-संबंध आदि घटनाएँ कथावस्तु के दिल्ली की कहानी से जुडी हैं।

बम्बई के साथ मुक्ता का अभिनय, अभिनय में मिली प्रशंसा, अभिनेता से आकर्षण आदि का चित्रण है। कलकत्ता महानगर में तबादला होने पर वहाँ मिला एक फ्लैट, अक्षय की बेटी से परिचय, बेटी की बालसुलभ बातों में मातृत्व अनुभव करने की ललक, अक्षय से परिचय, अक्षय से यौन-संबंध, अक्षय से विवाह के लिए इन्कार आदि बातें जुडी हैं।

ये सारी बातें मुक्ता के जीवन की उर्ध्वगामी गति का आलेख हमारे सामने रखती है, परन्तु फिर भी मुक्ता की मानसिकता अच्छी न होने के कारण वह टूट जाती है। उसे जो पाना था वह लक्ष्य वह पाती तो है परन्तु उसका स्वत्व, उसकी अस्मिता यहाँ ध्वस्त होती है।

इस उपन्यास की कथावस्तु में मनोवैज्ञानिक धरातल पर मुक्ता में निर्मित हीनत्व बोध, अकेलापन, घुटनशीलता, टूटनशीलता, अलगाव आदि के दर्शन होते हैं जिससे कथावस्तु ने अस्तित्ववादी भावदर्शन से युक्त मनोवैज्ञानिकता का चोला पहना हुआ है।

प्रस्तुत उपन्यास में प्रमुख पात्र मुक्ता है, जिसके इर्द-गिर्द सारी घटनाएँ केन्द्रित हैं। मुक्ता के व्यक्तिमत्व को बढ़ावा देने वाले या उसे तोड़ने वाले भी कई पात्र यहाँ आये हैं। अनिल, सतपाल, सुखेन्दु, अक्षय, उसके माता-पिता, उसकी बहनें उषा-विद्या, छोटी लड़की किन्नी आदि पात्र इनमें आये हैं। इन पात्रों में से एक पात्र अनिल बचपन में ही मुक्ता पर जबरी करता है और उसकी मानसिकता में खलल डालता है। बाकी पुरूष पात्र उसके व्यक्तित्व में उभार लाते हैं। परन्तु उनकी कहानी सुनते ही उसका संग छोडते हैं।

मुक्ता अंत तक अविवाहित रहकर अपनी टूटनशीलता को उजागर करती है। उपन्यास में दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता जैसे महानगरों का वातावरण, वहाँ के फ्लैट का वातावरण आया हैं। ऐसे वातावरण में मुक्ता की घुटनशीलता पर प्रकाश डाला है।

कुसुम अंसल के आलोच्य हिन्दी उपन्यास की भाषा हिन्दी अंग्रेजी का मिश्र रूप है। "उसतक" 1979 में अंग्रेजी, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं के शब्द मिलते हैं। बैड, इन्जेक्शन, नर्स, मर्चेन्ट, नोट, स्ट्रेन, जॉन्डिस, ऑपरेशन, कॉन्शस, प्रिन्सिपल, बिल्डिंग, ऑफिस, पोस्टिंग, स्लीपिंग, एक्ट्रेस, स्प्रिन्टर, प्रॉमिस आदि अंग्रेजी के शब्द सहजता से आये हैं। पंजाबी के शब्द कुडमाई, चुडैल आदि तो कमब्ख्त, तनख्वाह, आशिकी, मुस्तैदी, कफन आदि उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी प्रस्तुत उपन्यास में देखने को मिलता हैं। इस उपन्यास में अंग्रेजी वाक्यांशों का देवनागरी लिपि में प्रयोग किया है, जैसे "डोन्टवरी", "व्हाट सरप्राइज", "मीट माई फ्रेड", "यू हैव लवली आइज", "यू आर ब्रेव", "यू नीड रैस्ट", "में आई हैल्प यू"। "बिजली का करेंट छू लिया हो" जैसे व्यंग्योक्ति यहाँ देखने को मिलती है। "जूती में पानी पिलाना" आदि मुहावरे भी यहाँ आये हैं। प्रस्तुत उपन्यास में प्रतीकात्मकता, लोकोक्ति, बिम्बवाद के दर्शन होते हैं।

"जलते अंगारे" को हाथ में उठाकर धुएँ के बादलों में घिरती-घिरती पूरी तरह कड़वाहट में डूब जाना चाहती हूँ, "उदासियों की देवी, रोशनी को अंधेरे में बदलती जादूगरनी" आदि सूक्ति वाक्यों के दर्शन भी यहाँ होते हैं। "उसतक" में कथात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, व्यंग्यात्मक, पूर्वदीप्ति, संवादात्मक, प्रतीकात्मक, मनोविश्लेषणात्मक आदि शैलियों के दर्शन होते हैं।

मुक्ता के जीवन का बिखराव और इस बिखराव के पीछे सामाजिक दायित्व पर कुसुमजी ने अच्छा प्रकाश डाला है। साठोत्तरी कालखंड में महिला उपन्यासकारों ने जो उपन्यास लिखें इन उपन्यासों में "उस तक" का स्थान निश्चित अग्रणी हो सकता है। यहाँ मुक्ता की मनोवैज्ञानिकता के कारण कथावस्तु ने अनेक मोड़ लिए हुए लक्षित हैं। लक्ष्यपूर्ति की साधना की वेदी पर बलि चढ़ी एक नारी मुक्ता

की व्यथा कथा का यह उपन्यास एक दस्तावेज लगता है।

कुसुम अंसल - "अपनी-अपनी यात्रा" 1981

"अपनी अपनी यात्रा" 1981 में कुसुम अंसल ने नारी तथा पुरूष पात्र की मानसिकता मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत की है। सुरेखा छुट्टियों के दिनों कानपुर में रहने के लिए जाती है । वहाँ रहना उसे चक्कर लगता है। "जिसकी एक सलाख ऊपर जाती है, दूसरी नीचे आती है।"[26] सुरेखा जानती थी कि उसके भीतर का सब कुछ उसका अपना बनाया हुआ है। बाहर के संसार में वैसा कुछ नहीं है। बाहर की दुनिया रंगीन है, बाहर का सूरज चमकीला है, पर उसके भीतर का अन्धेरा उसके निजी विचारों का था, जो उसके मन में उसकी अंतरात्मा में उथल-पुथल मचाए रहता था। उसका शरीर, उसकी आँखें उसे जीवन के सतरंगे इन्द्रधनुष्य की ओर ले जाती थी, पर वह थी कि कहीं भीतर-ही-भीतर मर जाना चाहती थी। सतरंगे उजालों को एक किरण के धागे में बांधकर जीवन के हाथों लौटा देना चाहती थी।

सुरेखा को कानपुर में रहते हर पल यही महसूस होता कि उसके वहाँ रहने से जैसे कुछ ठीक से जुड नहीं पा रहा। मम्मी को कोई दोष नहीं दिया जा सकता कोई भी अठारह-उन्नीस साल की लड़की लाकर सामने खड़ी कर दे और कहें, यह तुम्हारी बेटी है, तो क्या एकाएक उसे बेटी मान लेना होगा ? फिर बेटी के पालने, बड़ी होने में और बेटे के पालने-पोसने की प्रक्रिया में बहुत अन्तर होता है। बेटे की माँगे भिन्न होती हैं। वह बड़ा होने के साथ-साथ अपने आप परिवार से दूर होता जाता है। बेटी बड़ी होने के साथ-साथ माँ से और चिपकना चाहती है, माँ की मित्रता चाहती है। माँ के साथ अपने छोटे-बड़े रहस्य बाँटना चाहती है। बेटी एक तरह से माँ की परछाई होती है। युवा होने के साथ उसे माँ की आवश्यकता और ज्यादा महसूस होती है। सुरेखा को लगता है जैसे वह एक लादी हुई बीमारी की तरह उन लोगों के गले पड़ गई थी, सोचकर बहुत घुटन होती थी, खूब उलझन होती थी, पर रास्ता कोई नहीं था। दिन बीतते रहे, समय तो किसी के लिए रूकता नहीं।

मधुर खिल-खिलाहट से भर आती, चांदनी-सी बिखेरती सुरेखा की उदासी भरे बादलों को बिजलियों से भर जाती। कमरे में उसकी आवाज गूँजती रह जाती, "तू अपनी जून भुगत रही है सुरेखा, तेरा जीवन भी कोई है। तेरी इस कैद में मेरा तो दम ही घुट जाए।"[27] मधुर जी रही थी और सुरेखा जी पाने की सजा भुगत रही थी। उसकी पूरी की पूरी लापरवाही और स्वतंत्रता का कारण था उसकी माँ का अटूट लाड-प्यार जो उसे पूरी छूट दिये था।

मधुर अपना जीवन एक खेल समझकर जिंदादिल जीवन बिता रही थी। सुरेखा उसे समझा रही थी कि यदि ऐसा न हो, तू इस खेल में इतना उलझ जाए कि फिर उभर न सके ? क्या तूने कभी अपने भविष्य के बारे में सोचा है. इस बात पर मधुर व्यंग्य भाव से हँसती है। उसे कहती है कि "जन्म बार-बार नहीं होता। जन्म बरबाद करने के लिए भी नहीं होता। जब तक जिओ, अच्छी तरह जिओ, उसका एक पल भरपूर जिओ। सब अच्छे लगते हैं।"[28] यहाँ जीवन के उपभोग पर बल दिया है।

मधुर की मित्रता के संबंध अधिक दृढ थे। सबके साथ वह मित्रता के भाव रखती थी वह समझती है कि "मैं आखिर क्या है ? मुझे दीया ही समझ लो। हर दीये को तेल चाहिए जलने के लिए। पर तेल कहाँ मिलेगा ? प्रेम से, स्नेह से ही तो जीवन बत्ती जलती है। मैं सुख बटोर रही हूँ, प्रेम जोड रही हूँ, क्योंकि उसके बिना मैं बिलकुल भी चल नहीं सकूँगी।"[29] यहाँ प्रेम की महत्ता प्रस्तुत की गयी है।

मधुर स्पष्टता से कहती है कि प्रेम सच पूछो तो मुझे हुआ नहीं क्या है प्रेम ? अपनी आत्मा को किसी और के शरीर में प्रतिष्ठा कर देना - उसके दुःख, दर्द को अपने में महसूस करने पर किसी के साथ मुझे ऐसा लगे - वह मिला नहीं अभी तक। या शायद प्रेम "सेक्स" से आगे कुछ नहीं है। प्रेम का नाम आते ही तुम्हारे हाथ टटोलते हैं। जिस्म पर एक भूखी निगाह डालकर तुम्हें चीर डालते हैं। मैं उस दौर से गुजर चुकी सुरेखा। "जिंदगी शायद एडवेंचर है। एक रहस्योद्‌घाटन

है।"[30] हर पल नया रहस्य सामने आता है, उसे खोज लो, फिर और एक नये के लिए चल पड़ो बस। मैं अपनी कार में बैठी हूँ। पेट्रोल पाकर, मेरी कार फिर तेजी से चलती है। मैं रूकती हूँ, पर जुडती नहीं। किसी भी रूकावट को अपना पडाव या स्टेशन नहीं बनाती। जिंदगी को यात्रा ही समझे तो अच्छा होता है। उलझन नहीं होती। सफर अच्छा करे, बस सुविधाएँ जुटाते रहो।

मधुर अंधविश्वास पर विश्वास नहीं करती है। उसका अपना नया जीवन दर्शन है। बिलकुल साफ, पारदर्शी किसी को दुख मत दो, किसी को गलत कहकर नहीं बहकाओ झूठ नहीं बोलो। बस जहाँ तक हो सकता है, इसी रास्ते पर चलती है। हाँ खुशी पाने के लिए उसका मन मचलता है। इसलिए वह चाहती है कि जितनी बन पड़े उतनी खुशी बटोर ले। वह कहती है "मैं अधूरे जागरण में विश्वास नहीं करती। जीना है, तो भरपूर जिओ कि एक बार जिन्दगी से शिकायत न रहे कि जिआ नहीं, जिन्दगी ने तुम्हें कुछ दिया नहीं।"[31] मधुर अपनी जीवन की व्यथा सुरेखा के सामने व्यक्त करती है। वह जिंदादिल जिन्दगी बिताना चाहती है। मधुरा के माध्यम से कुसुमजी ने जीवन के प्रति आसक्ति को प्रस्तुत किया है।

किसी केस के कारण शिव और सुरेखा मद्रास पहुँच जाते हैं। उसी दिन श्याम के समय टैक्सी में बैठकर दोनों समुद्र तट पर जाते हैं। चारों तरफ काफी भीड थी। एक ओर अनजाना, अजनबी, शहर बहुत-सी बत्तियों से बिखरा जैसे किसी खुशी का जश्न मना रहा था। दूसरी ओर दूर तक फैला हुआ सागर क्षितिज को छूता सुरेखा की कल्पना की उड़ान पर जैसे जोर से अट्टाहास-सा कर रहा था। सागर की कल्पना तो बहुत बार की थी परंतु सागर को देखा पहली बार था। वे दोनों उसी सागर के किनारे साथ-साथ खड़े थे, जिसे सुरेखा ने अपनी कल्पना में बहुत बार देखा था। सुरेखा समुद्र की लहरों को उठाकर अपने हाथों पर और शरीर पर झेलना चाहती थी, पर शिव के सामने उसे संयत रह जाना पड़ा। "समुद्र की ओर देखकर वह सोचती है, "सागर पास होकर भी मुझसे इतना दूर क्यों है?"[32] रेत पर खुला समुद्र लहरों में बहकर आता, शोर मचाता, सुरेखा को आमंत्रण देता रहा। सागर की तरफ देखकर सुरेखा के मन में उठे भाव दार्शनिक लगते हैं।

शिव पूछते हैं कि आप पहली बार समुद्र को देखती है, तो कैसा लगता है ? यहाँ बैठकर पूरे क्षितिज को देखा जा सकता है। सुरेखा अपने मन की बात कहने लगती है कि "मुझे तो क्षितिज को देखना नहीं है। मैं तो समुद्र को प्यार करती हूँ। मेरा ऐसा विचार है कि क्षितिज की कल्पना ही मन में रहे तो अच्छा है। क्योंकि क्षितिज एक छोर है, अंत है। वह सागर को बादलों से जोडता है और एक किनारे पर सागर के अस्तित्व को आकाश में बदल देता है, क्षितिज। न, आप भी क्षितिज को नहीं देखिए। यह और कुछ नहीं, समाप्ति की एक रेखा है।"[33] यहाँ प्रतिकात्मकता के दर्शन होते हैं।

"नहीं सुरेखा क्षितिज अंत नहीं है, क्षितिज विस्तार है, क्षितिज एक जीवन रेखा है - जहाँ धरती और आकाश का मिलन होता है और मिलन ही तो जीवन है, जीवन का स्पन्दन है।"[34]

अनिवार्य नहीं कि निजी कारण सदैव नकारात्मक हो। ये प्रेरक भी हो सकते हैं और इस प्रकार सकारात्मक भी। "अपनी अपनी यात्रा" की सुरेखा इसका उदाहरण है। सुरेखा सीनियर एडवोकेट शिव की जितनी आराधना करती है, उतनी ही कार्य के प्रति समर्पित होती चलती है। वकालत को निजी कार्य मानने का भाव उसमें उत्तरोत्तर विकसित होने लगता है। फाइलों की साज-सम्भाल, सहायक ग्रन्थ पढ़कर नोटस् लेना, विचार के लिए महत्वपूर्ण मुद्दे उठाना आदि मूलभूत काम वह स्वेच्छा से करती है। स्पष्ट है "मनोवैज्ञानिक कारण सामान्य कर्मचारी की भाँति कामकाजी महिला को भी अधिक कर्तव्यनिष्ठ बनाते हैं।"[35]

वैसे सुरेखा के मन में यह भी बात आयी थी, यदि प्रशान्त मधुर को समझने की कोशिश करे तो वे दोनों अच्छे जीवनसाथी बन सकते हैं। पर प्रशांत में एक परिवर्तन आ चुका था। वह अपने से नीचे तो क्या, अपने आस-पास भी नहीं देखता था। उसकी दृष्टि के फोकस में मधुर नहीं आती थी और मधुर-मधुर का विवाह नाम की व्यवस्था में विश्वास ही नहीं था। उसके जीवन में पुरुष का स्थान,

शरीर की आवश्यकताओं का मात्र एक इन्तजाम था। वह अपने सारे रोमान्सों के किस्से ऐसी आसानी से सुनाती थी, जैसे किसी नई पुडिंग की रैसिपी बता रही हो। वह सेक्स को जीवन की एक बहुत ही साधारण भावना मानती थी वह कहा करती थी कि "जीवन में जब वह क्षण आता है तो पशु-पक्षी, वृक्ष या मनुष्य में कोई अन्तर नहीं रह जाता। उसके लिए टुथ-ब्रश लेना या संभोग कर लेना एक जैसा था। क्या हुआ ? नहा - धो लो, साबुन मलकर साफ कर लो, तौलिये से पोछों, बस सब कुछ धुल-पुछ जाता है।"[36]

अवधेश सुरेखा को अपना बनाना चाहता है। उसके साथ शादी करना चाहता था। लेकिन सुरेखा शादी नहीं करना चाहती। वह उसे समझा रही है कि, "बहुत बच्चे हो तुम अवधेश। खाली अपने "हाँ", कह देने से शादी ब्याह नहीं हो जाते। यहाँ हिन्दुस्तान में यहाँ और बहुत कुछ है जो शादी के साथ समानान्तर चलना है और वह है अपने परिवार की सुख-सुविधा। तुम्हारे घर तक आने से पहले एक रेल्वे क्रासिंग आता है। वहाँ खडे होकर सोचना पडता है - पटरियों के बीच लेटा हुआ धूल भरा कुचला रास्ता कितनी ही मजबूरियों और प्रश्नों के अंक हाथ में थमाता था और जब धकधकाती हुई रेल चली जाती है तो लगता है, अंक अर्थहीन हो चुके हैं। फिर भी हम रास्ते को फलांग जाते हैं। रास्ते का कोई रेल्वे क्रासिंग रूकावट नहीं हो सकता। सिर्फ आपका अपना "मेंटल मेक अप" आपके विचार, जो कहीं बाहर से नहीं आते भीतर से उपजाते हैं, वहीं तो फैसला ले सकते हैं।

"सुरेखा के व्यक्तित्व को भी अद्‌भूत दृढ़ता प्रदान की है। सुरेखा ने शिव के सान्निध्य में आकर सभी ग्रन्थियों से मुक्ति पा ली है। जीवन के अर्थ उसके सामने खुलने लगे हैं। अन्याय को सहने की अपेक्षा उसका प्रतिकार करने का भाव उसमें अधिकाधिक उग्र होने लगा है। अब वह जीवन को रोक कर काँटने की अपेक्षा जूझकर अपने ढंग से जीने की पक्षधर हो गई है। संक्षेप में उसका व्यक्तित्व निखर गया है।"[38]

डॉ॰ पारूकांत देसाई के मतानुसार, "कुसुम अन्सल द्वारा प्रणीत "एक और पंचवटी" एक प्रेम कथा है। दो दिन की प्रेम कथा।"[39]

निष्कर्ष

प्रस्तुत उपन्यास में मधुरा की कथा, सुरेखा-शिव की कथा, सुरेखा सागर की कथा, प्रशांत-मधुरा की कथा, अवधेश सुरेखा की कथा, आदि कथाओं के आधार पर कथावस्तु का धागा बुनने का प्रयत्न किया है। इसमें सुरेखा में स्थित हीनत्वबोध का परिचय कराकर सुरेखा की मानसिकता की विविध परतों को खोलकर रखने का प्रयास किया है।

इस उपन्यास की कथावस्तु कानपुर, मद्रास आदि महानगरों से जुडी हुई है। इस उपन्यास के वातावरण में चेतना, प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। मद्रास का "सागर" और सागर पर फैले "क्षितिज" में प्रतीकात्मकता के दर्शन होते हैं। सुरेखा, मधुरा, शिव और अवधेश इन विभिन्न पात्रों द्वारा जीवन के विभिन्न दृष्टिकोनों के दर्शन होते हैं। जीवन प्रेम के लिए, उपभोग के लिए है यह सबक हमें मधुरा से मिलता है। अवधेश का दृष्टिकोण उपभोक्ता संस्कृति का सूचक लगता है जो उचित-अनुचित का चिन्तन न करके केवल उपभोग पर दृष्टि केन्द्रित करता है। शिव पत्नी से टूटकर सुरेखा को स्वीकार करके एक प्रकार से जीवन से समझौता करना चाहता है। सुरेखा के रूप में एक उच्चविद्याविभूषित युवती की दु:खांतिका को यहाँ पेश करके उसकी मानसिकता के चढाव-उतार को कुसुमजी ने यहाँ चित्रांकित किया है। यहाँ सुरेखा के जीवन का बिखराव दिखाया है। इस उपन्यास की कथावस्तु को मनोवैज्ञानिकता की धरातल पर प्रस्तुत करके अंसलजी ने सुरेखा की घुटनशीलता, टूटनशीलता, अलगाव, हीनत्वबोध, अकेलापन आदि के दर्शन हमें कराये हैं। उपन्यास की नायिका सुरेखा के इर्द-गिर्द उपन्यास की सारी घटनाएँ केन्द्रित हैं। सुरेखा के व्यक्तित्व को बढ़ावा देने वाले उनके पिताजी हैं, जिनकी मृत्यु के बाद वह अत्यन्त दु:खी होती है।

"अपनी-अपनी यात्रा" 1981 की सुरेखा विवाह के नाम से भी घबराती है। उसने अपने पापा-मम्मी के शिव-मंजरी के और मिन्ना उद्देश के असफल कटु वैवाहिक संबंधों को देखा है। बहन मिन्ना की वैवाहिक जीवन की घुटनशीलता

उसने परख ली है और वह आजीवन अविवाहित रहना चाहती है। यहाँ सुरेखा का अविवाहिता रहकर जीने का दृढ संकल्प समाज जीवन की विसंगति की पोल खोलता है और सुरेखा के बिखराव में समाज को जिम्मेदार ठहराता है। प्रस्तुत उपन्यास में मिश्रित हिन्दी भाषा के दर्शन होते हैं। देशी-विदेशी शब्दों का प्रयोग भी यहाँ हुआ है। स्टेज, पोस्टमार्टम, कॉम्प्लैक्स, रिजल्ट, प्रैक्टिस, इन्वीटेशन, टेस्ट, सोफिस्टिकेटेड, सेन्सिटिव, एम्बीशन, रेकार्ड, केस, स्टैण्डर्ड, क्रिमिनल्स, आदि अंग्रेजी शब्द, पुर्जा, फरियादी, कुर्ता आदि उर्दू शब्द। "माँ तो बहुत खुबसूरत है। बेटी के जन्म के समय क्या खाया था - बैंगन या बरसाती जामुन।" "लो कमाऊ हो गई है बेटी। अब क्या कमी है, बैठे-बैठे कमाई खाओ।" सौतेली माँ की व्यंग्योक्ति भाषा का हु-ब-हु वर्णन किया है। "माई हार्ट लीटस अप, व्हेन आई बिहोल्ड ए रेनबो इन द स्काई, लेट मी डाई, चाइल्ड इज द फादर आफ मैन", "समथिंग इन्वाइटिंग टू एक्स प्लोर इट इज वैरी डिस्टर्बिंग" आदि अंग्रेजी वाक्यांशो का प्रयोग हुआ है। "बेवकूफों को हिरा परखना नहीं आया।" जैसे सूक्ति वाक्य भी यहाँ हैं। "यादों का एक जलता-बूझता जुगनू जैसे मस्तिष्क में फड़फड़ाने लगा आदि के रूप में यहाँ बिम्बवाद के दर्शन होते हैं। इस उपन्यास में "जिसका मत्था नंगा, उसका शरीर नंगा" जैसी कहावतें भी आयी हैं। "जीवन जब तक जिओ, अच्छी तरह जिओ उसका एक पल भरपूर जिओ के रूप में लोकोक्ति देखने को मिलती है। कुसुमजी कवयित्री होने के नाते काव्य पंक्तियों के उनके उपन्यासों में दर्शन होते हैं। जैसे -

"वो ग़ज़ल वालों का असलूब समझते होंगे
चाँद कहते हैं, किसे खूब समझते होंगे।
कितनी मिलती है मेरी गज़लों से तेरी सूरज
लोग तुझको मेरा महबूब समझते होंगे।।"

वर्णनात्मक, विवरणात्मक, पत्रात्मक, प्रतिकात्मक, पद्यात्मक, चित्रात्मक, काव्यात्मक, संवादात्मक, पूर्वदीप्ति, मनोविश्लेषणात्मक आदि शैलियों का परिपाक प्रस्तुत उपन्यास सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है। सुरेखा की जिन्दगी को कुसुमजी ने अनेक मोडों पर से आगे बड़ाकर सुरेखा की मानसिकता के विविध पहलुओं के दर्शन हमें करा

दिए हैं। इस कार्य में कुसुमजी की भाषाशैली ने अत्यन्त सफलता प्राप्त की है।

कुसुम अंसल - "एक और पंचवटी" 1985

बदलती सामाजिक परम्पराओं एवं मान्यताओं की शृंखला में संयुक्त परिवार का विघटन आज हो रहा है। कुसुम असंल के "एक और पंचवटी" 1985 में संयुक्त परिवार के कारण नायिका साधवी की घूटन, टूटन, रिक्तता आदि का पर्दाफाश किया है। "संयुक्त परिवारों के स्थान पर अब व्यक्ति परिवारों के प्रचलन का कारण आधुनिक युग की विषम सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ रही हैं।"[40] शिक्षा, राजनीति, स्वतंत्र, सर्जन तथा सामाजिक स्वतंत्रता के क्षेत्र में जब से नारी व्यक्तित्व की स्वतंत्र सत्ता लेकर प्रश्न उठने लगे हैं, तभी से पारिवारिक संगठनों के प्रति नारी के दृष्टिकोन में परिवर्तन दिखाई देने लगा है। अब वह परिवार में रहना अपने समुन्नत विकास में बाधा पाती है। इसका कारण नयी और पुरानी पीढ़ी की मानसिकता का टकराव कहा जा सकता है।

आधुनिक युग में दाम्पत्य जीवन की विषमताओं को लेकर भी परिवार के प्रति नारी की मानसिकता में अन्तर आया है। पति उपेक्षा, अधिकार भावना, अविश्वास, कलह, नये और पुराने विचारों का संघर्ष, पतिव्रता का एकांगी आदर्श आदि इस दिशा में महत्वपूर्ण कारण कहे जा सकते हैं, जो परिवार के प्रति नारी असहिष्णुता की भावना भरते हैं।

युग परिवर्तन में नारी की चेतना को विभिन्न स्तरों पर आन्दोलित किया। उसके परिणाम स्वरूप उसकी निजी मान्यताओं एवं स्थापनाओं को प्रणयन होना स्वाभाविक था। अपने प्रति चले आ रहे सामाजिक मानदण्डों की पुनर्व्याख्या करवाने की उनकी दलील बल पकड़ती जा रही है। "बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उनके आचरण संबंधी नैतिकता और अनैतिकता की परिभाषा एवं मुहावरों की नूतन अर्थवत्ता की आवश्यकता अधुनातन नारी ने अनुभव की तथा समय-समय पर स्वतंत्र विचार-संप्रेषण में वे निःसंकोच आगे बढ़ी।"[41]

आज यौन-संबंधों को लेकर पवित्रता, स्थायित्व तथा इसके प्रयोजन से संबंधित विश्वास बदल रहे हैं और उसमें नये आयाम जुड़ रहे हैं। आज की शिक्षित नारी हो या ग्रामीण युवती यह परिवर्तित आस्था दोनों वर्गों की नारियों में परिलक्षित होती है। कुसुम अंसल के "एक और पंचवटी" 1985 में साधवी की मानसिकता के चढ़ाव-उतार, नीतिसंबंधी उसकी धारणा, कामकुंठाजन्य उसकी मनोवैज्ञानिकता, कुंठा की शिकार बनकर रिश्तों की दीवारे लांघने की प्रवृत्ति आदि के दर्शन यहाँ होते हैं। यहाँ साधवी विवाहित होकर भी विवाह बाह्य संबंधों को स्थापित करके "एक और पंचवटी" का निर्माण करना चाहती है। यहाँ साधवी की अस्तित्व के प्रति सजगता, पढ़ी-लिखी साधवी में पति और परिवार तक सिमट रहने से उत्पन्न हुई घुटनशीलता, कलात्मक रूचियों के विकास के लिए घर का वातावरण उपयुक्त न होने से उसकी होने वाली तडफन, उसके पति यतीन के बिजनेसमैन होने के नाते परम्परागत भारतीय पत्नी की तलाश चाहते हैं, जिसका कोई व्यक्तित्व न हो और वह अपने इशारे पर नाचे। साधवी की स्थिति इस हालत में देखने लायक बनती है। वह उसकी मानसिकता का चित्रण करती हुई कहती है -

"मैं घुट रही थी। चाहती थी चिल्ला-चिल्ला कर कहूँ कि, मैं पत्थर नहीं हूँ यतीन, मुझे पत्थरों की योनि में मत ढकेलो, मेरा पदार्थीकरण हो रहा है, मुझे बचा लो, मैं जीना चाहती हूँ। शत-शत वर्ष जीना चाहती हूँ, वह अपना जीवन जिसे जीने का मुझे पूर्ण अधिकार है।"[42] सुबह होते ही यतीन का दूर पर चला जाना, यतीन साधवी में कोई समझौता न होना, यतीन का घर न आना इन बातों से पता चलता है कि यतीन-साधवी के दाम्पत्य जीवन में तनाव है जो एक दूसरे को नहीं समझ पा रहे हैं। इस अपमानजन्य स्थिति का चित्रण करते हुए लेखिका ने साधवी की मानसिकता को उजागर करते हुए लिखा है, "अपमान से साधवी का शरीर जल रहा था। अपने स्टुडिओं में रात भर अनेकों रंगों के बीच खोई हुई वह रंग खोजती रही जो बिना किसी कारण उससे छीन लिया जा रहा था। जिसकी अनुपस्थिति से उसका जीवन बदरंग हो गया था।"[43]

इस हालत में साधवी का घरेलू कामकाज में खुद को गढ़ा लेना, घर आये मेहमानों की खातीर-तावीज में समय गुजारना, विक्रम द्वारा साधवी को शो-पीस की भाँति अन्यों को दिखाकर उसकी प्रशंसा से भावविभोर होना, यतीन को साधवी की अन्यों से हुई प्रशंसा अच्छी न लगना, इससे यतीन का अधिक उदासीन होते रहना, उसका चेहरा उतर जाना, यतीन की साधवी के प्रति उदासीनता देखकर साधवी का कला तथा पेंटिंग के शौकों से दूर रहना, पार्टी में विक्रम के साथ हुए साधवी के वार्तालापों से साधवी की मनस्थिति देखिए - "मेरे भीतर की सहज स्फूर्ति अपने से किए हुए समुचे विकल्प एक निष्क्रिय उदासी में बदल रहे थे।"[44]

यतीन साधवी से सीधे-सच्चे व्यवहार की अपेक्षा रखता था इसलिए साधवी कभी-कभी पूरा दिन कपड़े नहीं बदलती, बाल नहीं बनवाती, घर में केवल खपती रहती। अब साधवी का सम्पर्क अपने देवर विक्रम से बढ़ने लगा। विदेश से फोन आने पर विक्रम द्वारा साधवी को अपने फोन के पास बिठलाना, फोन पर की बातें लिख लेने को कहना, फिर पढ़कर दिखाने को कहना, काम समाप्ति पर साधवी का कमरे से गुजरते जाना, विक्रम द्वारा उसे रूकने को कहना, विक्रम द्वारा साधवी की आँखों में देखते हुए सोचना - "अद्‌भुत-सी अनुभूति थी जो मुझमें प्रकाश की वाष्प सी भीतर ही भीतर घुमेड़ने लगी थी।"[45] साधवी में अचानक चेतना उभर कर आ रही थी। उसे परिभाषित करने का प्रयास करती तो लगता वैसा कुछ है। जो कुचले हुए सपनों और मसली हुई इच्छाओं के चूरे जैसा झरता है। अपने आप अचानक अजनबी-सा बनकर आडे आ गया था। पता नहीं कब तक उसकी आँखों के उस सीधे दृष्टिपात को वह भीतर रूपान्तरित होने देती रही। "जैसे वह दृष्टि मेरे भीतर एक सक्रिय जागरूकता भर रही है। उस दृष्टि की वस्तुनिष्ठ अनिर्वायता सामने सशक्त और महसूस करने योग्य थी।"[46]

विक्रम के सान्निध्य में साधवी की क्रियाशीलता और चेतना का निर्माण होना, उसके मन में एक संवेगात्मक व्याकुलता का उभरकर करवटें लेना, विक्रम के सान्निध्य में खुद के व्यक्तित्व को खोना, विक्रम के सान्निध्य में उत्पन्न आवेग को उसके द्वारा रोकने का प्रयत्न करना आदि बातों से साधवी की मनस्थिति के

दर्शन होते हैं।

साधवी का आँचल पकडकर विक्रम, कहता है, "साधवी तुम मुझे पसंद हो···तुममें जो भी है उसका मैं आदर करता हूँ। शायद इसलिए भी कि वह सब मुझे अपने लिए चाहिए था और जो मुझे प्राप्त नहीं हुआ था कभी मैंने यतीन के नाम तुम्हें क्रय करके सोचा था इस घर में तुम्हारी उपस्थिति मुझे संतोष देगी परन्तु ऐसा हुआ कब ?"[47] यहाँ विक्रम की मानसिकता के दर्शन होते हैं।

साधवी अपने टांगों में अशक्ति और माथे में चक्कर-सा अनुभव करती पम्म से बैठ गयी। उसकी ओर एक पथरायी दृष्टि से देखती रही। विक्रम अपने मन की बात कहने लगा। चार साल से तुम यहाँ हो। तुम्हारी उदासी में चित्रों में ढलती देखता हूँ। तुमसे क्रूर व्यवहार भी कर रहा हूँ। यतीन को भी जानता हूँ। वह तुम्हें प्रेम नहीं कर पा रहा और मैंने तुम्हारे जैसी महिला को अंधेरे से मढी एक अरक्षित असीमता मे बन्द कर दिया है। एक उग्र विपक्षी-सा तुम्हे यातनाएँ दिए जा रहा हूँ। विक्रम स्पष्ट रूप से कह रहा था, "मेरा जीवन तुम्हारे सामने है एक मशीन-सा व्यावहारिक और उबाऊ सोचा था वह सब जो अतीत में अपने भीतर दफन कर दिया था, तुम्हारे रूप में जगता जीवित देखकर प्रसन्नता होगी मुझे। कहीं से संतुष्ट तो हूँ कि तुम आस-पास हो पर मेरे कारण यातना पा रही हो इससे भी बेखबर नहीं हूँ। तभी आज यह कहना पड़ा। साधवी यह भी कह दूं तुम्हें चाहते जाना भी मेरी विवशता हो गयी है, तुमसे अभिप्रेरित मेरे भीतर का संसार हर पल तुम्हें अपने भीतर प्रतिबिम्बित देखता है, गलतियाँ मेरे साथ है, मनुष्य हूँ न, स्वीकारता हूँ, तुम्हें पा लेने की सजा मैं यतीन को भी देने लगा हूँ।"[48] विक्रम की इन बातों को सुनते ही साधवी इतने भयभीत हुई कि वह यतीन के बारे में और अपने व्यक्तित्व के बारे में सोचती रही। इतनी दूरी के बाद भी विक्रम के बारे में उसके मन में यह खींचाव कैसे निर्माण हुआ आदि बातों पर साधवी सोचती रही। विक्रम का इतना महान व्यक्तित्व इतना आकर्षक था कि कोई भी उसके प्रभावशाली अस्तित्व में अपने को खोकर अपना जीवन सार्थक कर सकती थी। फिर उसके दुर्बल क्षीण से व्यक्तित्व को जान बुझकर विक्रम इतनी बड़ी

परीक्षा में क्यों डाल रहे थे। विक्रम की बातों को सुनकर वह विचारों के धरातल पर विक्षिप्त-सी हो रही थी याद आ रहा था कहीं लिखा-पढ़ा था, "जो गुण वस्तुओं और जगत को संवेग प्रदान करते हैं वे अनन्त काल के लिए होते हैं। संवेग के दौरान वस्तु का एक निश्चित और अभिभूत करने वाला गुण उभरता है और यही हमारे संवेगों को बनाये रखता है। अनुभवातीत बना देता है। शायद मेरे शौक जिन्हें ये सभी मेरा गुण मानते हैं। पुनः मेरे आडे आने लगे हैं, वह क्यों मेरे दुश्मन हैं ?"[49] साधवी उसके समूचेपन से फैलते निवेदन को वैसे ही बिखेरता छोडकर अपने कमरे में भाग गई। कमरा बन्द करके अपने सुन्न हुए मन और तन को चेत में ले आने का प्रयास करती रही। सारा का सारा परिवेश बेकार या खिडकी से उतर कर आयी हुई सूरज की किरणें उसके पलंग पर ताना-बाना बुना रही थी। एक उलझन थी जो उसके जीवन का अभिन्न अंग बन गयी थी। वह कहती है, "उस उलझन में मेरे भीतर की भावनाएँ विश्लेषित हुई दूध का दूध, पानी का पानी-सी साफ एक ओर खडी थी। जिसमें मैं पूरी तरह अनभिज्ञ भी नहीं थी वह आज पारदर्शी हो आयी थी।"[50]

यतीन का व्यक्तित्व पथरीला था। वह अपनी पत्नी साधवी को संयुक्त परिवार में रहने के लिए बाध्य कर रहा था। वह साधवी से निर्ममता के साथ बाज आना चाहता था। उसकी यह पथरीली, निर्मम, कठोर प्रवृत्ति देखकर साधवी कहती है - "मैं पत्थर नहीं हूँ, यतीन मुझे पत्थरों की योनि में मत ढकेलो, मेरा पदार्थीकरण हो रहा है - मुझे बचा लो, मैं जीना चाहती हूँ। शत-शत वर्ष जीना चाहती हूँ। वह अपना जीवन जिसे जीने का मुझे पूर्ण अधिकार है।"[51]

विक्रम आंतरिकता से टूटने लगा है। साधवी की दुर्बलता पर क्रोध व्यकत करता है। साधवी इतनी छोटी-सी उम्र है तुम्हारी और परेशानियाँ कितनी ढेर। "पश्चाताप है आपको ? दैहिकता के अनुभवातीत उन क्षणों को पश्चाताप के मध्य मत घसीटिए। जो हुआ आकस्मिक था, शायद उसे होना था···और मैं तो उसे अपनी सुखपूर्ण उपलब्धि मानकर जी रही हूँ···आप से सच कहूँ वह मेरे सुख के

सबसे बड़े क्षण थे।"[52] शरीर का सम्मोहन चेतना के धरातल पर कितना कटु हो सकता है, तथ्य परखता उतनी ही कठोर। साधवी ने सपनों में भी नहीं सोचा था कि "पहले पत्नी बनी फिर परित्यक्ता और अब "कीप" रखैल।"[53] साधवी की चाहत तथा उसके भीतर का "स्व" उसे किस धरातल पर ले आया है। यह वचनबद्धता उसकी अपनी होगी क्योंकि अपना व्यक्तिचित्र स्वयं ही उसने गढ़ा है। मैं और कुछ नहीं हूँ एक जोड हूँ एक संगठन हूँ। क्रिया व्यापारों का तथा कुछ खण्डित रिश्तों का जिन्हें सहेजकर जीना होगा। यह सभी उसकी अपनी स्वेच्छा का परिणाम है। वह सोच रही थी कि "मैं क्यों चली इस राह पर ? अब चली हूँ, तो इस चुनौती को स्वीकारना होगा।"[54] विक्रम उसकी धारणा को जब इतने प्रयास से अवधारणा जन्य सीमा तक ले जा रहे हैं तो उसे भी तो सप्रयास स्थितियों का इस सदोषता को हँसकर सहना होगा। "सभी कटाक्ष रास्ते में उगे उपहासों के जंगल दंशों के बावजूद सह जाने होंगे। अपनी निर्मित की हुई इस कंटीली राह पर वह जितने कष्ट आये चलूंगी। वह विक्रम के लिए हूँ, उन्हीं के लिए बनी हूँ, उन्हीं को पा लेने के प्रयास में रेगिस्तान की तपती रेत पर बरसाती वर्षा की तरह बार-बार अपने अस्तित्व को उसके व्यक्तित्व के सम्मुख समर्पित कर दूँगी। वह जैसे चाहेंगे वैसे ही रहूँगी और फिर वह मेरे लिए इतना कर रहे हैं, "पंचवटी" को ही समूचा उठाकर मुझे भेंट दे रहे हैं कि वहाँ जिया हुआ सुख सदा सदा के लिए मेरा हो जाए।"[55]

उपन्यास की लेखिका कुसुम अंसलजी साधवी के सामने विक्रम के रूप में जो समस्या उपस्थित हो रही है, उसे यथास्थिति रखना नहीं चाहती वह साधवी यतीन में पडे अंतर को मिटाना चाहती है। साधवी यतीन में समझौता करके उलझी हुई इन दोनों की जिन्दगी को सुलझाना चाहती है इसके बाद साधवी मायके से ससुराल आ जाती है। पति-पत्नी में समझौता हो रहा था। "यतीन प्लीज मुझे छोड दो। मैं तुम्हारे योग्य नहीं रही हूँ। मुझे छूना भी मत।"[56] यतीन चौककर अलग हट गया। आवेग धुंध-सा उसके चेहरे पर छाने लगा। वह एकटक देखता रहा। साधवी अपनी गलती यतीन के सामने पेश करती है और कहती है तुमसे अलग हो जाने के बाद मैंने एक भिन्न जीवन जिया है। जिस तिलस्म की ओढ

कर तुम जीवन जी रहे हो और जिससे बच निकलने की प्रार्थना मैं तुमसे हर समय किया करती थी। उस तिलस्म से और बचे रहना मेरे बस की बात नहीं थी। संयोग भी ऐसा जुट आया कि मेरे सामने रास्ता भी नहीं बचा था। तुम्हारे भाई के अलौकिक अस्तित्व नेमुझे बाँध लिया। तुमसे शादी होने से पहले मैंने तुम्हें नहीं देखा था, मात्र विक्रम को देखा था तभी मन के एक कोने में उनका दिव्य रूप अपना एक स्थान बन गया था। बहुत प्रयास करने पर भी उसे मन से बाहर नहीं निकाल पायी। मैंने बहुत बार तुम्हें समझाने की कोशिश की। उनकी परछाई से हम अलग रहे लेकिन आपने मेरी बात मानी नहीं। विक्रमजी हमेशा मेरे शौक चाहत सभी का खयाल रखते रहे थे। तुम भर्त्सना दुत्कार देते थे। वह बिना किसी वार्तालाप के मेरे मन की इच्छा जान लेते थे।

विक्रम के खिंचाव से बचने के लिए वह अलग रहना चाहती थी। पति की भर्त्सना ने उसे इस रास्ते पर लाकर खडा कर दिया था। यतीन यह सब सुनकर क्रोधित हो जाता है। बेचैनी से कमरे में चक्कर काँटने लगता है। वह जानती थी कि उसके भीतर बहुत-सी आँधियाँ लड रही है। पर उसके भीतर ही आँधी थम गई थी। "सच कहना कितना कठिन होता है। गले में उतार लो तो नीलकंठ की तरह गरल की नीली रेखाएँ छोड जाता है। अब उसका विषाक्त असर यतीन पर देख रही थी।"[57] जिस भाई को देवता के समान यतीन मानता था, उसने ही उसे धोखा दिया। उसके विश्वास को गहरी ठेंस पहुँचाई थी। वह मुट्ठियाँ बन्द करता, बुदबुदता कमरे में चक्कर काट रहा था। सत्य स्पष्ट करने के बाद यतीन कितना क्रोधित हुआ था, इसका पता साधवी को आज हो रहा था। वह उसे समझा रही थी कि जो होना था वह हो चुका है। हमारे भाग्य एक दूसरे से जुडे नहीं। "मैं ही तुम्हारे घर पर एक चिंगारी-सी गिर गई हूँ, स्वयंजली विक्रम को जलाया, अब तुम्हें तपाना नहीं चाहती।"[58] यह ठीक होगा कि हम सदा के लिए अलग हो जायेंगे। मेरे मन में तुम्हारे प्रति कोई कटुता नहीं है। साधवी

के मुँह से विक्रम की काली करतुतें सुनकर यतीन क्रुद्ध होता है और उसकी मानसिकता ऐसे रंग पकडती है जिसके दर्शन साधवी को पहले कभी नहीं हुए थे।

दाम्पत्य दो आयामों का संगम रहता है, इसमें तीसरे के आगमन से संघर्ष की चिंगारी का निर्माण होता है। दाम्पत्य जीवन में दरारे पैदा होने लगती है, साधवी के बारे में यही हुआ जिसने विक्रम के सामने अपने पति यतीन को फीका महसूस करके एक और पंचवटी का निर्माण किया।

साठोत्तरी हिन्दी के उपन्यासों में दाम्पत्य जीवन के तान-तनाव ऐसे चित्रित किए गये हैं कि जिससे यह आभास होता है कि आज पति-पत्नी के रिश्ते की पवित्रता और गहराई एक बीते हुए अतीत की कहानी लगती है। अंसलजी के इस उपन्यास से इसका पता चलता है। आज नैतिक सिद्धान्तों के तहत ताप, पाप-पुण्य की परिभाषा में बदलाव की स्थितियाँ आ रही है। साधवी की कुंठित मनोवृत्ति से इसका पता चलता है।

पति की प्रेमिका तथा पत्नी का प्रेमी जब आपास में एक-दूसरे से मिलते हैं तब की मानसिक स्थिति कुसुम अंसल के "एक और पंचवटी" में देखने को मिलती है। उसमें अछूती स्कीम हमारी दृढ़ मानसिकता को चौकांती है। उपन्यास की नायिका समाज की मानी हुई लीक पर नहीं चलती क्योंकि वह आधुनिक युग की सीता है। उसकी योग्यता पर प्रसन्न होकर बधाई देने वाले अजनबी विक्रम के पति उसका मानसिक लगाव हो जाता है। वह उसके मादक विलायती परफ्यूम में सने कीमती सूट में खो जाती है। वह केवल विक्रम के ही बारे में सोचती रही। परफ्यूम की गंध ने उसे ऐसा मदहोश किया कि उसकी इच्छा ही नहीं रही थी कि वह कभी उसके पास से उठे। उसका सान्निध्य उसे रोमांचित करता रहता। लोग कहे जा रहे थे कि विक्रमजी ने उसे अपने भाई के लिए पसन्द किया है। फिर भी उसी में खोई रही। यतीन उसके लिए "क्रासवर्ड पजल" बना रहा। दोनों भाइयों से विक्रम ही उसे अधिक आकर्षक और अधिक सौंदर्यमयी लगा। इस पर साधवी कहती है, "मुझे उसके भाई के आकर्षण के फैले चक्रव्यूह को काटने के लिए कितना लड़ना पड़ा था, अपने आपसे।"[59]

यह यतीन जान पाता तो कितना अच्छा होता था। भाईजी के आकर्षण की दीवार को साधवी तो लाँघ सकी पर यतीन नहीं। उसका अपने भाई के कारण हीनता ग्रन्थि का शिकार होना ही वह कारण है जिसने तीसरे का प्रवेश घर में करवा दिया। शादी के बाद यतीन को दूर भेजना, साधवी को तड़पाने के लिए यतीन पर अंकुश रखना, विक्रम के ही कार्य थे। कारण "तुम्हें पा लेने की सजा मैं यतीन को बहुत अधिक देता हूँ। बरदाश्त नहीं कर पाता कि वह तुम्हें प्यार करे ।"[60]

साधवी स्तब्ध रह गयी। यह कैसी सजा है, जो वह पहले अपने को फिर यतीन को और बाद में साधवी को दे रहा है। वह सोचने लगती है कि इतना बड़ा क्या है उसमें जो उसे बाँध ले गया। विक्रम का व्यक्तित्व ही इतना आकर्षक है कि अच्छी से अच्छी लड़की उसके इशारे पर जान देने को उतारू हो जाती। "यदि साधवी उसे पसन्द ही थी तो यतीन के लिए पसन्द कर उसने उसे परीक्षा में क्यों डाला ? काश यदि कहीं भी यतीन का अपना व्यक्तित्व मजबूत होता तो वह मुझे इस जीवन से उबार लेता। पर वह तो स्वयं ही अनेक हीन भावनाओं में ग्रस्त हैं।"[61]

साधवी यदि विक्रम के साथ गोरखपुर न जाती तो शायद "तीसरे" का प्रवेश टल सकता था पर ऐसा हुआ नहीं। ट्रेन के डिब्बे में जब उसके व्यक्तित्व का धुआँ साधवी पर छाने लगा तो साधवी ने अपने मन से लड़ना छोड, उसे अपने ऊपर फैल जाने दिया। वह भी अपनी अधखुली आँखों को उसकी आँखों में डालकर जैसे पूरे संसार के सुख सागर में डूब गयी। "वह "कूप" में ऐसी सकुचाई नयी दुल्हन की तरह बैठी थी जो अपने पति के साथ पहली बार ससुराल जा रही हो।"[62] डाक के बंगले में महारानी जैसा स्वागत, बालों से भरी उसकी विशाल छाती, बाहर की पंचवटी जैसा मोहक वातावरण उसे स्वयं को विक्रम को सौंपने पर मजबूर करता है। साधवी वह नायिका है जिसने बड़ी ही श्रद्धा से तीसरे का वरण किया। तीसरा जानता है कि उसके कारण उसे उलझन होगी। पर नायिका जो कुछ कर रही थी, उसके परिणामों को भोगने के लिए तैय्यार होकर कर रही थी।

विक्रम के रिश्ते को वह प्यार का नाम नहीं दे सकती थी। उसे वह "चाहत" कह सकती थी। "चाहत" निर्मित के पीछे उसका स्वयं था। पत्नी के प्रति "कौम्प्लेक्स" निर्माण कर उसने स्वयं तीसरे के लिए द्वार खोल दिये थे। साधवी उसके बच्चे के साथ ऐसे ही जियी। "उसका यतीन को समझना या नीरा से डाइवोर्स लेकर साधवी के साथ रहना साधवी को मंजूर न था। कैसी विवशता है मैं उसे किसी भी तरह पा नहीं सकती। कोई भी रास्ता नहीं है कोई भी।"[63] विक्रम जब उसके सम्मुख एक प्रस्ताव रखता है, बस्ती की फैक्टरी वह उसके नाम से खरीदना चाहेगा। यतीन से उसको डाईवोर्स दिला देगा और महीने में एकाद बार आकर उसके साथ रहेगा, तब वह इस नये फैसले पर सोचने लगती है, "पहले पत्नी बनी फिर परित्यक्ता अब "कीप" रखैल। मेरी चाहत मुझे कहाँ ले आयी है। अब चली हूँ तो इस चुनौती को स्वीकारना होगा। उसे पाने के लिए समाज के सभी कटाक्ष उपहास हँसकर सहने होंगे।"[64] लेकिन लेखिका ने ऐसा होने नहीं दिया। उसने उस तीसरे को एयरक्रेश से हटवा दिया। उसका कई दिन बेहोश रहना, प्रीमेच्योर बेबी को जन्म देना, इस बात का प्रतीक है कि पूरा नहीं तो अधूरा ही सही वह विक्रम के नाम के साथ जुड़ना चाहती थी। लेखिका ने इस विषय द्वन्द का समाधान बड़ी कुशलता से दिया है।

"भारतीय भाषा के कई उपन्यासों में पत्नी के प्रेमी का प्रवेश हुआ है। अक्सर उसका परिणाम पति-पत्नी के विच्छेद में या प्रेमी की हत्या में या पति को छोड उसके साथ जाने में हुआ है। पर ऐसा समाधान और ऐसी नायिका जो तीसरे के प्रेम को खुले आम स्वीकार करे और अपने प्रेमी से कोई गिला शिकवा न करे, अपने आप में अजूबा है।"[65]

डॉ॰पारूकान्त देसाई के मतानुसार कुसुम अंसल लिखित "एक और पंचवटी" एक प्रेम कथा है। दो दिन की प्रेम कथा। इसमें वैवाहिक जीवन की घुटन पर प्रकाश डाला है। कुसुम अंसल के मतानुसार - "एक और पंचवटी" में संयुक्त परिवार की एक झलक है। जिसका गृहपति उस परिवार का बड़ा भाई है विक्रम।"[66]

निष्कर्ष

प्रस्तुत उपन्यास एक प्रेम कथा की भाँति लगता है और यह कथा केवल दो दिन में ही घटित हुई है। दो दिन में कथासूत्र के धागे को सुसूत्रता के रूप में गठित करके कुसुमजी ने अपनी प्रयोगधर्मिता का परिचय दिया है। यहाँ पेंटिंग, स्विमिंग, कुकिंग आदि कलाओं में पारंगत साधवी की जन्मजात प्रतिभा और कवि हृदय का पता चलता है। यह एक उच्च-वर्ग के संयुक्त परिवार की कहानी है।

विवाहोपरान्त साधवी का अपने देवर विक्रम के "हिप्नोटिक" व्यक्तित्व का शिकार होना, यतीन का अपने बड़े भाई की छाया में लघुत्व की ग्रंथि को महसूस करना, साधवी का अपने पति के पथरीले स्वभाव के कारण घुटनग्रस्त बनना, पति यतीन को साधवी की घुटन का पता न चलना, साधवी यतीन में इसी से तनाव का उत्पन्न होना, साधवी का मायके चले जाना, विक्रम का अपनी तीन बच्चों की पत्नी से अतृप्त रहना, गोरखपुर की सफर में साधवी विक्रम का प्रेम वंचित हृदय खुलते रहना, विक्रम की पत्नी द्वारा विक्रम पर पूरा अधिकार न जताया जाना, विक्रम का अपनी पत्नी से अतृप्त रहना, यतीन का पत्नी की कला-भावना से कोई संबंध न रखना, शारीरिक प्रेम में ही उसे रूचि होना, साधवी-विक्रम में मन तथा भावना की समानता होने से एक दूसरे की तरफ खींचाव होना, इस खींचाव के परिणाम स्वरूप उनके द्वारा रिश्तों तथा उम्र की दीवारों को तोड़ना, उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले में दोनों का दो दिन के लिए साथ रहना, उनके इन दो दिनों के आवास स्थान को साधवी द्वारा "पंचवटी" नाम देना, विक्रम से उसका गर्भवती होना, कुछ समय अपने मायके गोरखपुर रहकर साधवी द्वारा अध्यापन कार्य में जुटना, यतीन को अपनी गलती का बोध होना, यतीन द्वारा उसे लौट आने को कहना, सास की बीमारी का समाचार सुनकर साधवी का लौट आना, आने पर साधवी द्वारा अपनी गलती को यतीन के सामने प्रस्तुत करना, यतीन के योग्य न रहने के कारण उसके द्वारा अकेली रहने का निश्चय करना, यतीन को गलती का एहसास हो जाना, भावी शिशुसहित साधवी को स्वीकारने का यतीन द्वारा निश्चय करना आदि सारी घटनाएँ उपन्यास की कथावस्तु की मनोवैज्ञानिकता को प्रस्तुत करती हैं।

इस उपन्यास के पात्र साधवी और विक्रम पाश्चात्य सभ्यता में रंगे हुए लगते हैं। जिसके कारण इन्होंने भारतीय नाते-रिश्ते की पवित्रता की दीवारों को तोड डाला है और भारतीय सांस्कृतिक मूल्य को तोड़ने का प्रयत्न करके मूल्य गिरावट का परिचय दिया है। इस उपन्यास में दाम्पत्य जीवन की दरारों के पीछे की मनोवैज्ञानिक कारण मीमांसा करने का प्रयत्न किया है।

वातावरण के रूप में भी उपन्यास ने काफी सफलता हासिल की है। यतीन के संयुक्त परिवार की टूटनशीलता, यतीन साधवी के दाम्पत्य जीवन की घुटनशीलता, बस्ती के जिस बंगले में दो दिन के लिए विक्रम साधवी ठहर जाते हैं, वहाँ के परिवेश का पंचवटी जैसा वातावरण, साधवी के मायके गोरखपुर का वातावरण, विक्रम की हवाई जहाज दुर्घटना में मृत्यु आदि सभी स्थानों का वातावरण पात्रों की मानसिकता को बनाने बिगड़ाने में अग्रणी रहा हैं। जिसका सफल चित्रण कुसुमजी ने किया है।

"एक और पंचवटी" 1985 की भाषा आदर्श, चिंतनशील, वैचारिकतापूर्ण लगती है। सभी पात्र शिक्षित होने के कारण उनकी भाषा भी परिष्कृत लगती है। प्रस्तुत उपन्यास में अंग्रेजी तथा उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है। अधिकतर इस उपन्यास में शुद्ध साहित्यिक खडी बोली भाषा का प्रयोग उल्लेखनीय है। स्वीमिंग पूल, ऑफिशियल व्हिस्की, आरकेस्ट्रा, अपॉइन्टमेंट लैटर आदि अंग्रेजी शब्द। तलखी, जुबान, शराफत, इम्तहान आदि उर्दू के शब्द देखने को मिलते हैं। इस उपन्यास में काव्यात्मकता के भी दर्शन होते हैं। जैसे -

"माता पुनि बोलि मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसु लीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा
सुजि वचन सुजाना रोदन ठाना होई बालक सुर भूपा।।"

वर्णनात्मक, कथात्मक, संवादात्मक, विवरणात्मक, विश्लेषणात्मक, घटनात्मक, व्यंग्यात्मक, पूर्वदीप्ति प्रतीकात्मकता ., मनोविश्लेषणात्मक, पत्रात्मक, सांकेतिक आदि शैलियों के प्रयोग देखने को मिलते हैं।

संक्षेप में कुशलता पूर्वक भाषाशैली के माध्यम से कुसुमजी ने "एक और पंचवटी" की नायिका साधवी की मनोवैज्ञानिकस्थितियों को पाठकों के सामने खोलकर रखा है। पाचीनता में आधुनिकता को तलाशने का प्रयत्न यहाँ "पंचवटी" तथा "लव-कुश" नामकरण के माध्यम से हुआ है। विक्रम की मौत दिखाकर लेखिका ने कुशलता के साथ साधवी-यतीन का मेल कराकर दाम्पत्य जीवन की उलझी हुई समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया है और यह भी विशद किया है कि पति-पत्नी के जीवन में शरीर की अपेक्षा मन की चाहत अधिक महत्वपूर्ण है। उपन्यास के शीर्षक में प्राचीनता में आधुनिक युग बोध को तलाशने का प्रयत्न किया गया है। कुसुमजी का प्रस्तुत उपन्यास शिल्प की दृष्टि से सफल लगता है। यहाँ ऐसा लगता है कि मात्र प्रेम के लिए प्रेम से पाये चरमसुख की स्वानुभूति को बनाये रखने के लिए साधवी पारम्पारिक विवाह बंधन समाज और उसकी मान्यता किसी को भी स्वीकार नहीं करती।

नि ष्क र्ष

कुसुम अंसल के आलोच्य तीन हिन्दी उपन्यासों के आशय को मनोवैज्ञानिकता की धरातल पर प्रस्तुत करने का प्रयत्न हमने किया हैं। इन तीनों उपन्यासों की कथावस्तु में आधुनिक युगबोध के सशक्त दर्शन होते हैं। "उसतक" 1979 में एक नौकरी पेशा नारी की दयनीय गाथा है। जो व्यवस्था को शिकार बनाकर जीवन में सब कुछ पाती है परंतु अंत में स्वयं टूटकर बिखर जाती है। "उसतक" की मुक्ता बुद्धिवादी नारी होकर भी उसके जीवन में घटित घटनाओं के कारण उसकी मनोवैज्ञानिकता ने कितनी करवटें बदली हैं, इसका बहुआयामी रूप सामने आता है। "अपनी अपनी यात्रा" 1981 में नारी जीवन की यात्रा कितने मोडों पर से पथभ्रष्ट होकर गुजरती है, इसका चित्रण देखने को मिलता है।

"एक और पंचवटी" 1985 में साधवी के रूप में एक विवाहित भारतीय साधवी नारी भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हुई भी सेक्स के क्षेत्र में पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण करके पवित्र रिश्तों की दीवारें लांघकर मूल्य-टूटन का शिकार बनती है। साधवी का विवाह यतीन से होने पर भी और विक्रम का विवाह नीरा

से होकर भी अपने-अपने दाम्पत्य जीवन की परिधि में दोनों भी संतुष्ट नहीं हैं। परिणाम स्वरूप उन दोनों में समान गुण-दोषों का होने के कारण उन दोनों में खींचाव की स्थिति का निर्माण होता है, जिससे भारतीय संस्कृति के मूल्य में गिरावट के दर्शन होते हैं। साधवी का पथभ्रष्ट होकर दूसरी "पंचवटी" का निर्माण करना, अपने बेटों के नामकरण "लवकुश" रखना आदि से आधुनिक युगबोध को झलक देखने को मिलती है। यतीन की लघुता की ग्रंथि, विक्रम की पूरे परिवार पर हावी होने की प्रवृत्ति ने ही साधवी को गुमराह किया है। साधवी की गिरावट के लिए पति यतीन को जिम्मेदार ठहराकर लेखिका ने साधवी को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया है। विक्रम की पत्नी एक परम्परागत पत्नी दिखाकर उसके द्वारा विक्रम के विरूद्ध उपन्यास में कोई संघर्ष नहीं खडा किया गया है। अंत में "सुबह के भूले शाम को वापस लौटते हैं" की उक्ति के अनुसार लेखिका ने यतीन साधवी के बीच कुशलता के साथ समझौता किया है। सुरेखा की लघुत्व की गंथी ने सुरेखा को अस्वस्थ बनाया है। वह परम्परागत विवाह संस्था से संत्रस्त लगती है और अंत में जो निर्णय लेती है, शिव के सान्निध्य में वह सभी ग्रंथियों से मुक्त होकर अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व बनाती है।

कुसुमजी के आलोच्य हिन्दी उपन्यासों की मक्ता, साधवी, सुरेखा आदि नायिकाएँ उच्च विद्या विभूषित होकर भी भारतीय पुरूषप्रधान संस्कृति में घुटनशीलता का शिकार होती है। इस घुटनशीलता को तोड़ने के लिए इन तीनों की अपनी अलग-अलग यात्राएँ हैं, जिसे पढ़ने पर इनके अंतर्मन की थाह लग सकती है और इनके जीवन के बिगड़ाव के कारणों की तलाश भी की जा सकती है। इन तीनों नारियों की दुर्गति का कारण लेखिका ने सामाजिक व्यवस्था को माना है। नौकरी पेशा नारी पर बॉस की गंदी नजरें, सुंदर युवतियों पर परिवार के ही रिश्तेदारों की तिरछी नजरें मुक्ता और साधवी के माध्यम से प्रस्तुत की हैं। ये नारियाँ आधुनिक युग की बौद्धिक नारियाँ हैं जिन्होंने भारतीय समाज व्यवस्था के यथार्थवादी ज्वलंत सत्य की तलाश की है। यथार्थ जीवन की सच्ची अनुभूति हमें इन तीन नारियों के माध्यम से मिलती है। इन नारियों ने सत्यानुभूति से प्रेरित होकर सामाजिक तथ्यों पर

बल दिया हैं। ये आदर्शवाद का विरोध करती हुई दिखायी देती है। वे विकासवाद सिद्धान्तों की समर्थक लगती है। अपने विकास के मार्ग में रोडे अटकाने वाली शक्तियों का ये शिक्षित नारियाँ विरोध करती हैं। मुक्ता तथा सुरेखा इसके उदाहरण हो सकते हैं। आधुनिकता की तड़क-भड़क में आदर्श नारी उपेक्षित मानी जाता सकती है। विक्रम की पत्नी इसका उदाहरण है। विवाह तथा दाम्पत्य जीवन जैसी बाधक रूढ़ियों का ये नारियाँ विरोध करती हैं। साधवी, मुक्ता, सुरेखा इसके उदाहरण हो सकते हैं। कुसुमजी ने दाम्पत्य जीवन की असफलता के रूप में साधवी के मन में कुठां का निर्माण किया है और इसे यतीन को जिम्मेदार ठहराया है।

संक्षिप्त में इन तीन आलोच्य हिन्दी उपन्यासों में वातावरण निर्मिती ने कमाल की सफलता प्राप्त की है। कुसुमजी के ये तीनों उपन्यास महानगरीय जीवन बोध से जुडे हुए होने के कारण इन उपन्यासों में दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, बस्ती, गोरखपुर, कानपुर, मद्रास आदि महानगरों के वातावरण को मुखरता प्राप्त हुई है। इसकी अपेक्षा दिल्ली में मुक्ता का घरेलु वातावरण, उसके अतिरिक्त दिल्ली, कलकत्ता के फ्लैट का वातावरण, निगमबाबू के दफ्तरों का वातावरण, अभिनय की दुनिया का वातावरण यहाँ मुखर बन बैठा है। "एक और पंचवटी" में साधवी के संयुक्त परिवार का वातावरण, दाम्पत्य जीवन की घुटनशीलता का वातावरण, गोरखपुर, बस्ती के बंगले का वातावरण तो "अपनी अपनी यात्रा" में सुरेखा का घरेलु वातावरण, ॲड·शिवबाबू के साथ काम करते समय दफ्तर का वातावरण, मद्रास में सागर के किनारे का वातावरण खड़ा करके इन पात्रों की मानसिकता से इस वातावरण का सफलता के साथ संबंध जोड़ने का प्रयत्न कुसुमजी ने किया है।

भाषाशैली की दृष्टि से इन उपन्यासों में सभी पात्र उच्चविद्याविभूषित होने के कारण उनकी भाषा में अनेक से अंग्रेजी शब्दों का एवं वाक्यों का संमिश्रण देखने को मिलता हैं। फिर भी भाषा की धारावाहिकता तथा गति में कोई बाधा नहीं आ पायी है। इसमें कुसुमजी का भाषा कौशल्य देखने को मिलता है। अंग्रेजी,

उर्दू, पंजाबी आदि शब्द भी आये हैं। इसका कारण यह है कि लेखिका को तीनों भाषाओं से लगाव रहा हैं।

यहाँ वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विवेचनात्मक, पत्रात्मक तथा प्रतीकात्मकता आदि शैलियों के दर्शन होते हैं। भाषाशैली की दृष्टि से ये उपन्यास सफल हैं।

संदर्भ

1· डॉ·किरण बाला अरोड़ा, साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में नारी, अन्नपूर्णा प्रका·प्र·सं·1990, कानपुर, पृ·90

2· डॉ·शशि जेकब, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा प्रका·,प्र·सं·1989, पृ·226

3· वही, पृ·226

4· डॉ·शीलप्रभा वर्मा, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ,विद्याविहार प्रका·, प्र·सं·1987, कानपुर, पृ·261

5· वही, पृ·262

6· वही, पृ·262

7· वही, पृ·263

8· वही, पृ·263

9· कुसुम अंसल, आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में महानगर, अभिव्यंजना प्रकाशन, प्र·सं·1993, दिल्ली, पृ·153

10· कुसुम अन्सल, "उसतक" परागप्रकाशन, प्र·सं·, 1979, दिल्ली, पृ·28

11· वही, पृ·41

12· वही, पृ·73

13· वही, पृ·78

14· वही, पृ·99

15· कुसुम अन्सल, आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में महानगर, अभिव्यंजना प्रकाशन, प्र·सं·1993, दिल्ली, पृ·161

16· कुसुम अंसल, "उसतक" परागप्रका·, प्र·सं·1979, दिल्ली, पृ·54

17· वही, पृ·55

18· वही, पृ·58

19· कुसुम अंसल, "उसतक" पराग प्रका·प्र·सं·1979, दिल्ली,पृ·58

20· वही, पृ·80

21· वही, पृ·91

22· वही, पृ·91

23· वही, पृ·101

24· डॉ·प्रमिला कपूर, "विवाह सेक्स और प्रेम" प्र·सं·1977, पृ·82

25· डॉ·पारूकान्त देसाई, "आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास", चिंतन प्रका.कानपुर, प्र·सं·1994, पृ·77

26· कुसुम अंसल, "अपनी-अपनी यात्रा", सरस्वती प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1981, पृ·29

27· वही, पृ·36

28· वही, पृ·36

29· वही, पृ·37

30· वही, पृ·37

31· वही, पृ·39

32· वही, पृ·80

33· वही, पृ·80

34· वही, पृ·80

35· डॉ·रोहिणी अग्रवाल, "हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला", दिनमान प्रका· प्र·सं·1992, दिल्ली, पृ·233

36· कुसुम अन्सल, "अपनी-अपनी यात्रा", सरस्वती प्रकाशन, प्र·सं·1981, दिल्ली, पृ·105

37· वही, पृ·141

38· डॉ·रोहिणी अग्रवाल, "हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला", दिनमान प्रका·,प्र·सं·1992, दिल्ली, पृ·240

39· डॉ·पारूकान्त देसाई, आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास, चिंतन प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1994, पृ· 75

40· डॉ·विमल शर्मा, "साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूप", संगम प्रका·, प्र·सं·1987, इलाहाबाद, पृ·42

41· वही, पृ·67

42· कुसुम अन्सल, "एक और पंचवटी", अभिव्यंजना प्रकाशन, प्र·सं·1985, दिल्ली पृ·44

43· कुसुम अंसल, हिन्दी उपन्यासों में महानगर, अभिव्यंजना प्रकाशन, प्र·सं·1993, दिल्ली, पृ·213

44· कुसुम अन्सल, "एक और पंचवटी", अभिव्यंजना प्रकाशन, प्र·सं·1985, दिल्ली, पृ·37

45· वही, पृ·39

46· वही, पृ·40

47· वही, पृ·40

48 वही, पृ·40

49· वही, पृ·41

50· वही, पृ·41

51· वही, पृ·45

52· वही, पृ·103

53· वही, पृ·102

54· वही, पृ·103

55· वही, पृ·103

56· वही, पृ·108

57· वही, पृ·109

58· वही, पृ·109

59· वही, पृ·43

60· वही, पृ·45

61· वही, पृ·46

62· वही, पृ·55

63· वही, पृ·117

64· वही, पृ·119

65· डॉ·धनराज मनधाने, "कामकाजी नारी मानवीय संबंधो का विघटन" अन्नपूर्णा प्रका·,प्र·सं·1993, कानपुर, पृ·154

66· डॉ·कुसुम अन्सल, "आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में महानगर", अभिव्यंजना, प्रका·,दिल्ली प्र·सं·1993, पृ·93